International Journal of Professional Development
Vol.11, No.1, Jan-June2022 ISSN: 2277-517X (Print),2279-0659 (Online)
Impact Factor: 3.148 (IFSIJ)

दलित स्त्री का संघर्ष–दोहरा अभिशाप

डॉ. सुमन
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
लक्ष्मीबाई महाविद्यालय,दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय सामाजिक संरचना की मुख्यधारा के भीतर विभिन्न जातियां हैं और इन जातियों के भीतर एक ऐसी जाति है जिन्हें सदियों से समस्त अधिकारों व सुविधाओं से वंचित रखा गया है। और इन वंचितों में भी वंचित एक ऐसी जाति है–और वह है स्त्री। मनुस्मृति में कहा गया है कि

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः।
निरिन्द्रिया ह्यमंत्राश्च स्त्रियेऽनृतमिति स्थितिः।।9.18।।

अर्थात् ''धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि स्त्री का जातिकर्मादि–संस्कार मंत्र–विहीन हो, क्योंकि वह अज्ञानी होती है। मंत्र की अनाधिकारिणी होने से उसकी स्थिति मिथ्या ही होती है।''[1] यानी कि वह सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में होते हुए भी उन सभी अधिकारों से वंचित है जिनसे सामाजिक जीवन में किसी का एक स्वतंत्र वजूद बनता है। भारतीय संदर्भ में धर्म और शास्त्र का सहारा लेकर स्त्रियां न सिर्फ सवर्ण समाज में बल्कि दलित समाज में भी पुरुषों द्वारा सतायी जाती हैं। कुल मिलाकर उनका यह शोषण पुरुषवादी मानसिकता का परिणाम है।

दलित पिछड़ों के लिए बाबा साहब का नारा था – 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो।' यह नारा किसी भी सामाजिक वर्ग के लिए सही हो सकता है यह स्त्रियों पर भी उतना ही लागू होता है, जो लिंगभेद की दृष्टि से भारतीय समाज में पुरुष मानसिकता के शोषण की शिकार रही हैं। इसलिए भारत में स्त्रियां मनो – सामाजिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से दलित और वंचित मानी जाती हैं। किन्तु जिस प्रकार दलितों में मनुवादी मानसिकता और जात–पात के अन्तर्विरोध पाये जाते हैं, उसी प्रकार स्त्रियों में भी जाति और लिंगभेद जनित भेदभाव पाये जाते हैं।

लेकिन स्त्री जब दलित हो तो उसका संघर्ष पुरुष से कई गुणा बढ़ जाता है। सामाजिक दृष्टि से उसे दो–दो व्यवस्थाओं से संघर्ष करना पड़ता है–एक पुरुषवादी वर्चस्व से, दूसरा जातिवादी व्यवस्था से। कौसल्या बैसंत्री जी का 'दोहरा अभिशाप' शोषण की इसी दोहरी पीड़ा की कथा है। अभी तक दलित–साहित्य के माध्यम से दलितों पर सवर्णों द्वारा किए गए अत्याचार ही उभरकर सामने आए थे, लेकिन कौसल्या बैसंत्री जी का 'दोहरा अभिशाप' एक दूसरे पक्ष को उजागर करता है; कि सिर्फ सवर्ण ही दलितों का शोषण नहीं करते, बल्कि दलित भी दलित का शोषण करने से नहीं चूकते। और उसमें भी यदि वह शोषण स्त्री का है, तो फिर पूछना ही क्या ? एक स्त्री के दलित बोध की पीड़ा स्त्री होने की पीड़ा के साथ मिलकर और बड़ी हो जाती है। स्त्रियों के मामले में सवर्ण पुरुषों की सोच और दलित पुरुषों की सोच में कोई अंतर नहीं। कथा नायिका ''कौसल्या बैसंत्री का जीवन इस बात का प्रमाण है कि उनके व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक बाधाएं उनकी बिरादरी के पुरुषों ने ही खड़ी की। उन्होंने बेबाक शब्दों में कह दिया कि बाबा साहब के निकट सहयोगियों ने भी उसके साथ जबरन यौनाचार करना चाहा। उनकी बस्ती के लोगों ने ही उसका जीना दुभर कर दिया। इसलिए उसकी पहली मुठभेड़ सवर्ण पुरुष सत्ता से नहीं, दलित पुरुष सत्ता से है।''[2] लेखिका यहां एक और सत्य को व्यक्त करती है कि जिस प्रकार दलित पुरुष अपने नहीं उसी प्रकार स्त्री जाति भी अपनी नहीं। इस सत्य को लेखिका ने 'दोहरा अभिशाप' में कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है–समकुंवर नामक स्त्री को दूसरी स्त्री इसलिए पीटती है कि वह उसके पति से सम्बन्ध क्यों रखती है। तब लेखिका उसी से प्रश्न करती है कि वह इस बात पर अपने पति को क्यों नहीं पीटती? दरअसल यहां वे इस बात को स्पष्ट करती हैं कि सामान्य तौर पर स्त्री की मानसिकता भी पुरुष को अपराधी न मानकर स्त्री को ही प्रताड़ित करने की रही है। दलितों के आंतरिक जातिवाद की तरह ही स्त्री जाति की भी यह आंतरिक दुर्बलता है कि वे पितृसत्तात्मक मानसिकता से इतनी गहरी जकड़ी हुई हैं कि उनकी प्रत्येक कार्य प्रणाली इस वैचारिकता से ग्रस्त होकर असंवेदनशीलता की हद भी पार कर जाती है। यह पितृसत्तात्मकता ब्राह्मणवाद का ही एक रूप है, जो आर्थिक शक्ति, धार्मिक, सांस्कृतिक मान्यताओं तथा पारिवारिक सत्ता को अपने अधीन रख स्त्री को दुर्बल बनाये रखने की कोशिश करता रहता है।

इसी से सम्बन्धित लेखिका एक और घटना का वर्णन करती है ''जिसमें एक सुन्दर दलित स्त्री दिहाड़ी पर मजदूरी का काम करती है। वह मिस्त्री को ईंट सीमेंट ढो–ढोकर पहुंचाती है। मिस्त्री मनचला होता है। सो एक दिन वह उसके स्तन भाग पर मजाक से गीले सीमेंट का गोला फेंक देता है। इस पर सभी मजदूर हंस पड़ते हैं। वह अपमानित होकर इसकी शिकायत अपने पति से करती है। लेकिन पति परमेश्वर उल्टे उसी पर कुल्टा होने का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल देता है लेकिन तब भी उसके कलेजे को शान्ति नहीं मिलती, तो वह अपनी पत्नी को निर्वस्त्र कर गधे पर बिठाकर घुमाता है। वह शर्म के मारे झाड़ियों में छिप जाती है क्योंकि उसके पास तन ढंकने भर भी कपड़े नहीं होते और जैसे ही उसे मौका मिलता है वह कुएं में गिरकर आत्महत्या कर लेती है। ऐसा दुर्व्यवहार करने पर मोहल्ले की महिलाओं द्वारा ही नहीं, बल्कि उस स्त्री के माता–पिता तक के द्वारा भी उचित ठहराया जाता है। पति तो पति उसके माता–पिता जिसने उसे जन्म दिया वो भी आकर उसी पर तोहमत लगाते हैं–अच्छा हुआ, कुल्टा थी, मर गयी।''[3] इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में उत्पीड़ित को ही कलंकित दिखाने की यह अंधी सोच आपराधिक प्रवृतिगामी हो चली है।

दलित स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त संदर्भ, परिवेश, समस्या और संघर्ष का स्वरूप मुख्य रूप से उजागर हुआ है। ''दलित स्त्री के जीवन में शिक्षित होने के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाइयों से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तिहरी मार को झेलने के प्रसंगों, घटनाओं, संघर्षों का चित्रण दलित लेखिकाओं ने प्रमुख रूप से किया है। पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरन्तर शोषण, उसके अस्तित्व और अस्मिता को कुचला जाना और इनके विरोध में स्त्री का संघर्ष...अन्याय, गुलामी, दरिद्रता, वंचना ने स्त्री के जीवन को एक ऐसी भयावहता, दीनता, लाचारी और कुचले जाने की पीड़ा से भर दिया।''[4] लेकिन शिक्षा व अथक संघर्ष ने उन्हें वाणी दी तथा अम्बेडकर के विचारों ने उन्हें दृढ़तापूर्वक छुआछूत, अंधविश्वास, असमानता के विरूद्ध खड़े होने की शक्ति दी। किन्तु कौसल्या जी की आत्मकथा सिद्ध करती है कि दलित चेतना के फलस्वरूप चाहे वह जाति दंश को हराने की कोशिश करती रहीं, लेकिन पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था उन्हें दुर्बल मानकर विजय प्राप्त करने का दंभ भरती रही। श्रेष्ठता बोध एक मानवगत विकृति है जो लिंग, जाति, धर्म व धन को लेकर विकसित होती है। धर्म, शास्त्र या ग्रंथ चाहे कितने ही समानता बोधक मूल्यों की बात करें, लेकिन व्यवहार में तो वह समाज में छोटे–बड़े, उच्च–निम्न होने के ही मानदंड तय करता है। लेखिका की यही सरल अभिव्यक्ति समाज के इस पक्ष पर विचार करने हेतु ध्यान आकृष्ट करती है।

आत्मकथा में तीन पीढ़ियों का संघर्ष उभरकर सामने आया है। पहली पीढ़ी में लेखिका की आजी (नानी) का संघर्ष है, दूसरी पीढ़ी में लेखिका की मां और तीसरी पीढ़ी में स्वयं लेखिका का संघर्ष है। जिसने अपनी आजी (नानी) और मां को न केवल संघर्ष करते देखा है, वरन् सामाजिक टिप्पणियों के विरूद्ध लड़ते, दृढ़तापूर्वक विरोध करते देखा है। लेखिका ने दलित समाज में व्याप्त सभी अच्छाइयों और बुराइयों को व्यक्त किया है। सवर्णों में जहां विधवा विवाह को मंजूरी नहीं दी जाती है, तो वहीं दलित समाज में विधवा अगर दूसरा विवाह करना चाहे तो उसे कोई रोक–टोक नहीं है। यह दलित समाज की एक अच्छी परम्परा ही कही जा सकती है। किन्तु यह एक बुराई भी लिए हुए है कि विधवा या तलाकशुदा महिला विवाह तो कर सकती है लेकिन एक विधुर या बुजुर्ग से और अगर विधुर पुरुष है, तो वह धूमधाम से किसी कुंआरी लड़की के साथ विवाह कर सकता है। लेकिन विधवा स्त्री किसी कुंआरे लड़के के साथ विवाह नही कर सकती थी। विधवा विवाह की विधि विधान भी कुछ अलग ही होती थी, विधवा को सुहाग की सारी सामग्री पहनाकर रात के अंधेरे में उसका पति अपने घर लाता था। ऐसा इसलिए किया जाता होगा कि इस विधवा का मुख कोई सधवा न देख ले जिससे कोई अनहोनी या अपशगुन न हो जाए।

लेखिका की आजी (नानी) भी एक विधवा थी। आजी का बाल–विवाह हुआ था, पति की मृत्यु के पश्चात एक बड़ी उम्र के व्यक्ति से उनका पुनर्विवाह हुआ जिसकी पहले से ही एक पत्नी थी और यह दूसरे नम्बर की। आजी बहुत सुंदर और साहसी थी। वह घर का सारा काम करती थी दिन भर जीतोड़ मेहनत करने के बाद भी शाम को वह अपने पति से बिना कारण ही मार खाती थी। आजी कुछ समय तक तो अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहाती है, लेकिन हार नहीं मानती। वह स्वाभिमानी है और सम्मान के साथ अपना जीवन जीना चाहती है। इसलिए वह पति के अत्याचारों को चुपचाप सहन नहीं करती बल्कि एक रात चुपचाप अपने तीनों बच्चों के साथ घर से निकल जाती है। लेकिन बीच वाली लड़की को रास्ते में ही बुखार हो जाता है और वह रास्ते में ही दम तोड़ देती है। ''आजी ने अपने दिल पर पत्थर रखा मन को काबू किया और पास में ही अपने हाथों से एक गड्ढा करके उसमें अपनी पुत्री को दफना दिया। ऐसा करते वक्त आजी के मन पर क्या बीती होगी ?''[5] लेकिन इतना सब हो जाने पर भी वह हिम्मत नहीं हारती। वह घर से निकल कर किसी रिश्तेदार के यहां आश्रय भी नहीं लेती बल्कि स्वतंत्र रूप से एक झोपड़ी बनाकर रहती है और अपने बच्चों का सम्मान के साथ पालन–पोषण करती है। आजी के जीवन से संबंधित एक और महत्वपूर्ण घटना है जो उन्हें बेहद स्वाभिमानी होने का प्रमाण देती है। अपने जीवन के अंतिम समय में कफन का सामान भी मैं स्वयं ही जुटाऊंगी किसी पर बोझ नहीं बनूंगी, ऐसा वह हर वक्त कहा करती थी और उन्होंने अपनी इस बात को सिद्ध भी कर दिया। जीते–जी ही नहीं वह मरते दम तक किसी के आगे झुकी नहीं।

लेखिका ने अपनी मां का चित्रण भी दृढ़, शिक्षा प्रेमी, कर्मकांड विरोधी के रूप में किया है। दिन भर दूसरों के यहां काम करके परिवार की परवरिश करना मां की दिनचर्या है। दुख सहकर भी माता–पिता बच्चों को पढ़ाते हैं। लेखिका की मां चाहती थी कि बच्चे पढ़े लिखें क्योंकि उन पर बाबा साहब के विचारों का प्रभाव पड़ चुका था। बच्चों की शिक्षा पूरी करवा कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना उनका उद्देश्य था। इस प्रकार माता–पिता के आपसी तालमेल के कारण ही लेखिका के सभी भाई बहन अच्छे से पढ़ लिख गए।

लेखिका ने दोनों ही स्त्रियों को शक्तिशाली व धैर्यवान चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। दोनों ही स्त्रियां स्वतंत्र निर्णय लेने और सूझ–बूझ की धनी रही हैं। खासकर लेखिका की मां में अपार धैर्य और समाज के सामने डटे रहने का साहस है। लेकिन इन दोनों स्त्रियों के सामने लेखिका का धैर्य और साहस कहीं भी कमतर नहीं आंका जा सकता है। दलित स्त्री को जाति बोध तो घर के बाहर होता है, किन्तु लैंगिक असमानता का बोध व कमतरी का एहसास उस पुरुष द्वारा घर में ही करा दिया जाता है, जो स्वयं समाज में जातिगत वर्चस्ववादी श्रेष्ठता बोध से त्रस्त है। अब यहां लगातार एक प्रश्न उठता है कि लेखिका जब पढ़ी–लिखी थी तो उन्होंने इतनी दिक्कतें उठाकर, जिल्लतें सहनकर, विभिन्न परेशानियों के बीच अपना जीवन घूट–घूटकर क्यों व्यतीत किया ? ऐसा अपमान भरा जीवन तो अशिक्षित औरतें भी जी लेती हैं। उन्होंने ने अपनी आजी और मां की तरह बगावत क्यों नहीं किया ?

आत्मकथा में लेखिका ने अपने और अपने पति के बीच के संबंधों की कड़ुवाहट को पूरे 40 वर्ष भोगा। उनके साथ उनका पति कितना घटिया व्यवहार किया करता था, यह सब बातें लेखिका ने बड़े ही खुले रूप से स्वीकार किया है। जिस व्यक्ति की शिक्षा से प्रभावित होकर उन्होंने उससे शादी करने का निर्णय लिया था, वह आदमी तो अशिक्षितों से भी ज्यादा गंवार निकला। दलित समाज में पति–पत्नी दोनों ही उच्च शिक्षित हो ऐसा देखने में बहुत कम ही आता है। शिक्षित होने का अर्थ मानवधर्मिता से है। जिसमें प्रेम, सौहार्द्र, आत्मीयता

व समानता व का वास होता है। यही सोचकर लेखिका देवेन्द्र कुमार से विवाह करती है लेकिन देवेन्द्र कुमार तो इसके विपरित ही होता है। प्रेम, उत्साह, प्रोत्साहन, परस्पर लगाव व सम्मान के अभाव ने लेखिका के अंतर्मन को तोड़कर रख दिया। परिवार एक ऐसी संस्था है, जहां सहिष्णुता, समर्पण, अहं–त्याग, निष्ठा, एकाग्रता की जो भावना काम करती है, अपने जीवन में लेखिका तो इसे साध ले जाती है। परन्तु उनके पति के लिए यह सब कुछ भी मायने नहीं रखता।

शादी के बाद देवेन्द्र कुमार अपने बारे में स्वयं ही कहता है– ''अपने मुंह से कहता हूं कि मैं बहुत शैतान आदमी हूं। उसने मेरी इच्छा, भावना, खुशी की कभी इज्जत नहीं की बात–बात पर गंदी–गंदी गाली देना, हाथ उठाना और मारता भी है तो बहुत ही क्रूर तरीके से। उसकी बहनों ने मुझे बताया था कि वह मां–बाप, पहली पत्नी को भी पीटता था।''[6] देवेन्द्र कुमार की असंवेदनशीलता तो उस वक्त हद पार कर जाती है जब वह जानता है कि उनकी पत्नी प्रसव पीड़ा से छटपटा रही है। फिर भी वह दौरे पर चला जाता है। बड़ी मुश्किलों से कौसल्या जी स्वयं को संभालते हुए अस्पताल में जाकर भर्ती हो जाती है और एक बेटे को जन्म देती है। जब उनका पति अस्पताल में आता है तो इस संबंध में लेखिका लिखती हैं कि ''मुझे जनरल वार्ड के पलंग पर लिटा दिया गया था। अब मुझे थोड़ा होश आने लगा था सिर भारी हो गया था। आंखें भी नहीं खुल रही थीं। तब देवेन्द्र कुमार की थोड़ी सी आवाज़ सुनाई दी। वह डॉक्टर से कह रहा था कि इसे अभी प्राइवेट वार्ड में रखो। मैं बड़ा ऑफिसर हूं, इसकी शान उसे दिखानी थी। इतना कहकर वह जैसे आया वैसे ही चला गया, मुझसे मिला भी नहीं और न ही अपने बेटे को भी देखने आया और जाते समय केवल तीस रुपये देकर गया था।''[7] वह तीस रुपये भी रोजाना के हिसाब से दस दिन का कमरे का किराया था। इसके बाद वह अस्पताल में आया ही नहीं यह भी नहीं सोचा कि वह कैसे आएगी या उसे कुछ और भी जरूरत हो सकती है। लेखिका कहती है कि ''क्या ऐसे पति से प्यार और श्रद्धा हो सकती है? इस बात को याद करते ही मेरा खून खौलने लगता है।''[8] यानी कहा जा सकता है कि लेखिका का एक पढ़े–लिखे व्यक्ति के साथ सुखी जीवन जीने का सपना अधूरा ही रह गया।

लेखिका का पति उच्च शिक्षित, लेखक और स्वतंत्रता सेनानी था किन्तु वह अपनी को स्वतंत्रता नहीं दे सका। उसके लिए तो उसकी पत्नी मात्र भोग्य वस्तु थी। लेखिका अपने पति के बारे में लिखती है कि उसे पत्नी केवल खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए ही चाहिए थी। मुझे किसी चीज़ की जरूरत है, इसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया। मुझसे मात्र वह अपनी नौकरानी की तरह बरताव करता था। अंततः दोनों एक साथ रहते हुए भी अकेले रहने के अभ्यस्त हो गए। लेखिका के अनुसार वह पहले चालीस रुपये महीने उन्हें देता था, लेकिन बाद में वह उनके निजी खर्चों के लिए भी कोई पैसा नहीं देता था। ऐसी स्थिति में लेखिका ने घर के काम–काज करना छोड़ दिया। वह केवल घर में खाना पकाने लगी। मैं कपड़े नहीं धोती थी, इसलिए वह साबुन भी अपनी अलमारी में बंद रखता था, चीनी भी बंद लेकिन थोड़ी–थोड़ी रोज़ एक कटोरी में लड़के के लिए चाय बनाने के लिए रख देता था। पति ने कभी मेरी कदर नहीं की बल्कि रोज़–रोज़ के झगड़े, गालियों से मुझे मजबूरन घर छोड़ना पड़ा और कोर्ट केस करना पड़ा। पैसे–पैसे के लिए मोहताज हो गई कभी मां से मांगती तो कभी बहन दे दिया करती थी।

'दोहरा अभिशाप' की लेखिका एक शिक्षित व समझदार महिला है, यदि ऐसे में पढ़े–लिखे लोग आपस में ही लड़कर अपनी गृहस्थी में आग लगाएंगे तो उसका बहुत ही बुरा असर पड़ता है। फिर ऐसी स्थिति में परिवार को वह स्वस्थ व स्वच्छ वातावरण कैसे दे सकते हैं जिसके लिए सब संघर्ष कर रहे हैं। ऐसे में लेखिका केवल बच्चों को पालने की खातिर कमजोर पड़ जाती है। जब पति–पत्नी अलग होने का निर्णय लेते हैं तो उसका सबसे बुरा प्रभाव बच्चों पर ही पड़ता है। यहां लेखिका एक दलित स्त्री या पत्नी की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक मां की दृष्टि से देखती है। मां के लिए अपने बच्चों की खुशियों से बढ़कर कोई खुशी नहीं होती। यही कारण है कि एक उच्च शिक्षित, पूरे जीवन निडरता से जीने वाली इस महिला ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाने में अपने जीवन के इतने लम्बे वर्ष गवां दिए और पति से तलाक लेने के निर्णय में चालीस वर्ष लग गए। जब कुछ आलोचकों द्वारा लेखिका के आत्मनिर्भर न होने पर प्रश्न उठाया जाता है, तब यह प्रश्न पुरुषवादी नजरिये को ही सामने लाता है, जो बच्चों के पालन–पोषण व घरेलु काम–काज को कर्तव्य की श्रेणी में नहीं रखते हैं।

दोहरा अभिशाप' एक सम्भ्रान्त दलित स्त्री के तिल–तिलकर घुटने और पति तथा समाज की पुरुषवादी मानसिकता वाले लोगों से लांछित–प्रताड़ित होने की कथा है। इस आत्मकथा में लेखिका ने परिवार तथा अपने जीवन के संघर्षों को सीधी–सरल भाषा में बिना किसी लाग–लपेट के समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। जो मात्र लेखिका के जीवन से ही सम्बंधित नहीं है अपितु सम्पूर्ण दलित परिवार और महिलाओं की भी है जिन्होंने इस प्रकार के दंश को झेला है। अंततः लेखिका ने स्पष्ट रूप से बता दिया है कि शोषण सिर्फ बाहर और गैरों द्वारा ही नहीं होता, बल्कि शोषण करने वाले अपने भी हो सकते हैं। इसलिए थक हारकर हताश होकर बैठना नहीं है बल्कि दुना साहस के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है।

संदर्भ सूची

1. काशीनाथ वाजपेयी, मनुस्मृति, बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर, बनारस सिटी, द्वितीय संस्करण–1937.
2. बजरंग बिहारी तिवारी (आलेख), हंस, जुलाई, 2000.
3. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, बी–109 प्रीत विहार, दिल्ली–92, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 56.
4. विमल थोरात, दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स 2008, नई दिल्ली, पृ. 14–15.
5. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, बी–109 प्रीत विहार, दिल्ली–92, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 20.
6. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, बी–109 प्रीत विहार, दिल्ली–92, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 104.

7. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, बी–109 प्रीत विहार, दिल्ली–92, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 118.
8. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, बी–109 प्रीत विहार, दिल्ली–92, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 119.

www.ijpd.co.in